P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-8* ISSUE-4* December- 2020
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

संस्कृत वाङ्मय में जीवन – मूल्य

Life in Sanskrit - Values

Paper Submission: 15/12/2020, Date of Acceptance: 28/12/2020, Date of Publication: 29/12/2020

वीरेन्द्र कुमार जोशी
सह आचार्य,
संस्कृत विभाग,
गौरी देवी राजकीय महिला
महाविद्यालय, अलवर
राजस्थान, भारत

सारांश

संस्कृत साहित्य की यह विशेषता रही है कि उसने शाश्वत और युगीन, सामाजिक और वैयक्तिक, समष्टि और व्यष्टि के मूल्यों को समन्वित दृष्टि देकर अभिव्यक्त किया है। संस्कृत साहित्य में अध्यात्मवाद के साथ भौतिकवाद का सुन्दर समन्वय हैं । संस्कृत– काव्यकारों ने प्राचीन काल से ही पुरुषार्थ –धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष ,सत्य, श्रम, सत्कर्म, धर्म का पालन नैतिक– जीवन, ऋत, व्रत, ब्रह्मचर्य, परोपकार, लोक कल्याण, दान, त्याग पूर्वक उपभोग की भावना, सृष्टा के अनुशासन की पालना अर्थ और काम का नियमन ,मंगल भाव, उदारता, निष्कपटता का दृढ़ निश्चय, अतिथिसेवा ,समाज के सर्वविध कल्याण की कामना आदि जीवन मूल्यों का सशक्त चित्रण किया है, जो भारतीय जीवन दृष्टि को स्पष्ट करने के लिए अत्यन्त उपयोगी है । ये जीवन मूल्य संस्कृति के रूप में राष्ट्र की पहचान बन जाते हैं। संस्कृत वाङ्मय में सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की उदात्त भावना सर्वत्र व्याप्त है । वस्तुत ये जीवन मूल्य ही हैं जो मनुष्य को मनुष्य बनाते हैं और उसे समाज, राज्य, और राष्ट्र के सर्वविध कल्याण के प्रति प्रेरित करते हुए उसमें मनस्विता, शक्ति और संकल्प तथा मंगल भावना के समन्वय की भावना का विकास करते हैं।

It has been a specialty of Sanskrit literature that it has expressed the values of eternal and epoch, social and personal, society and individual by giving a coordinated vision. In Sanskrit literature, there is a beautiful synthesis of materialism with spiritualism. Sanskrit - poets have made Purushartha - Dharma, Artha, Kama, and Salvation, Truth, Labor, Satkarma, Religion, Ethics since ancient times - Life, Rit, Vrat, Brahmacharya, Philanthropy, Public welfare, Charity, spirit of consumption sacrificed , Cradle of the discipline of the universe, meaning and regulation of work, mangoism, generosity, determination of sincerity, hospitality, wishing for the universal welfare of society, etc., has a strong depiction of life values, which is very useful for clarifying the Indian life vision. is . These life values become the identity of the nation as a culture. In Sanskrit poetry, the sublime spirit of Satyam Shivam Sundaram pervades everywhere. In fact, it is these values of life that make a human being a human being and, by motivating him towards the universal welfare of society, state, and nation, he develops a sense of syncretism, strength and determination and a sense of Mars.

मुख्य शब्द : वरेण्य – वरण करने योग्य, निष्कपटता – कपट से रहित, अपरिग्रह – अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना, मुनिवृत्ति – मुनि के समान आचरण करना, परोपकार – दूसरे का भला करना, सुभाषित – सुंदर उक्ति (वचन), हिमाच्छादित – बर्फ से ढकी हुई, उदात्त – उच्च उत्तम, लोकहित – लोक का कल्याण, ऐश्वर्य समृद्धि, ब्रह्मचारी – गुरु के आश्रम में रहकर विद्या अध्ययन करने वाला बटुक।

Varnya - Selectable, Sincerity - Devoid Of Treachery, Nonconformity - Not Collecting More Things, Disinformation - Behaving Like A Saint, Benevolence - Benefiting Others, Well-Defined - Beautiful Utterances (Utterances), Snow-Covered - Snow Covered , Sublime - Highly Good, Public Interest - Welfare Of The People, Prosperity Prosperity, Brahmachari - Living In The Ashram Of The Guru, Studying The Knowledge.

प्रस्तावना

संस्कृत वाङ्मय में इस राष्ट्र की आत्मा को अभिव्यक्ति मिली है और वह अभिव्यक्ति सर्वाधिक ललित रूप में संस्कृत काव्य में हुई है। राष्ट्र की

भौगोलिक सत्ता, सांस्कृतिक अस्मिता, दार्शनिक चिन्तन–परम्परा जीवन मूल्य इन सब को संस्कृत कवियों की चेतना ने आत्मसात् किया है। पाश्चात्य साहित्य में मूल्य मीमांसा को बहुत महत्त्व दिया जाता रहा है। प्लेटो, अरस्तु से मूल्य चिंतन – दर्शन साहित्य की नई भूमियों तक आया है । भारतीय मनीषा भी जीवन मूल्यों को ही साहित्य की सर्वोच्च कसौटी मानती रही है।

साहित्यावलोकन

डॉ. बी.एस. कमलाकर ने TEJASVI ASTITVA RESEARCH JOURNAL FEB. 2017 में प्रकाशित अपने शोध आलेख .मानव मूल्य और संस्कृत साहित्य में बताया है कि मानव जीवन को उसके उद्‌गम से उत्स तक ले जाने वाले आचरणीय सूत्रों के समाहार स्वरूप को ही मानव मूल्य कहा गयाए जिसके अंतर्गत धर्माचरणए सत्य. वचन, परोपकार, दानशीलता, निष्काम. सेवा, त्याग, शान्ति, अहिंसा, सौहार्द. भावना आदि परीगणित होते हैं। इन मानव मूल्यों के सांचे में ढालकर जीवन को सार्थक बनाना ही हमारे सनातन साहित्य का एकमात्र उत्स रहा है। इसी प्रकार चारु यादव एवं राम अवध ने इंटरनेशनल जनरल ऑफ हिन्दी रिसर्च वॉल्यूम 2 इश्यू 5 सितंबर 2016 में प्रकाशित अपने शोध आलेख. साहित्य में जीवन मूल्य में कहा है कि मूल्य का जीवन से अटूट सम्बन्ध है। जीवन. मूल्यों और साहित्य का सापेक्ष से सम्बन्ध होता है। साहित्य के मूल्य जीवन. मूल्यों से ही निर्धारित होते हैं। साहित्य समाज से प्रेरणा लेता है और मानव साहित्य से। मानव जीवन के लिए जिन मूल्यों की उपयोगिता है वही मूल्य साहित्य के माध्यम से समाज के सामने रखे जाते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

इस लेख का उद्देश्य है समाज के सर्वविध कल्याण की कामना, भ्रातृत्व की भावना का विकास । ये जीवन मूल्य भारतीय संस्कृति में अनुस्यूत हैं । यहां का शासक वर्ग और प्रजा जीवन मूल्यों का निरंतर रक्षण संवर्धन करते रहे हैं और यह क्रम आगे भी निरंतरता बनाए रखें। ये जीवन मूल्य व्यक्ति के आत्मिक विकास में सहायक हैं तथा इनसे समाज का नैतिक आधार दृढ़ होता है । लोकहित की भावना का विकास होता है । मनुष्य और मनुष्य की समानता का भाव उदय होता है। जीवन में साहस, पुरुषार्थ ,उत्साह ,कर्मठता का निरंतर संचार होता रहे। हमारे अंदर त्याग पूर्वक उपभोग की भावना विकसित हो। प्रवृत्ति और निवृत्ति में समन्वय बना रहे।

साहित्य मूल्याभिव्यक्ति का परम्परागत माध्यम है। भारतीय साहित्य मानव जीवन के किसी ने किसी मूल्य से हमेशा जुड़ा रहा है। भारतीय संस्कृति में मानवीय जीवन का मूल्य सत्यं, शिवं, सुन्दरम् पर निर्भर है। मूल्यों की वैतरणी वैदिक साहित्य से प्रवाहित होकर युगानुकूल आकार–प्रकार ग्रहण कर आज भी सतत प्रवाहशीला है। जीवन मूल्यों के विविध स्वरूपों का अंकन संस्कृत साहित्य में सर्वत्र उपलब्ध होता है।

पाश्चात्य साहित्य में मूल्य–मीमांसा को बहुत महत्त्व दिया जाता रहा है। प्लेटो के प्रत्यय सिद्धान्त के साथ मूल्य मीमांसा का पश्चिम में आविर्भाव हुआ था, अरस्तु, स्टीइक तथा एपीक्यूरियन आदि से होता हुआ मूल्य चिन्तन दर्शन एवं साहित्य की नई भूमियों तक आया है। भारतीय मनीषा भी जीवन मूल्यों को ही साहित्यकी सर्वोच्च कसौटी मानती रही है। वस्तुतः साहित्य की रचना जीवन–मूल्यों की अभिव्यक्ति के लिए ही होती है। बाबू गुलाबराय ने लिखा है– ''साहित्य के मूल्य जीवन के मूल्यों से भिन्न नहीं हैं। अतः यह बात सर्वमान्य है कि जिसका जीवन में मूल्य है, उसका साहित्य में भी मूल्य है।[1]

संस्कृत काव्यकारों ने मानव जीवन के विविध पहलुओं को देखने–परखने की चेष्टा की है। उनकी दृष्टि में साहित्य मात्र मनोरंजन का साधन न होकर जीवन की सूक्ष्म संवेदनाओं, मनोविकारों और भावनाओं का विश्लेषण करने वाला माध्यम है। वैदिक ऋषि स्वयं जीवन की सार्थकता के अन्वेषी थे।

संस्कृत साहित्य प्राचीन समय से ही पुरूषार्थों को जीवन–मूल्य के रूप में प्रतिपादित और प्रतिष्ठापित करने का आदर्श लेकर चला था। महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में लिखा है कि धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष के विषय में जो यहाँ है वह अन्यत्र है और जो यहाँ नहीं है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं–

धर्मेचार्थे च मोक्षे च कामे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित।।

पुरूषार्थ को समग्र मानवीय जीवन– वैयक्तिक एवं सामाजिक–का आधार बनाने के लिए ही भारतीय मनीषियों ने वर्ण और आश्रम व्यवस्था का सूत्रपात किया। चारों पुरूषार्थ चारों आश्रमों से क्रमशः सम्बन्धित थे। ब्रह्मचारी वेदाध्ययन के रूप में धर्म की साधना के अनन्तर गृहस्थाश्रम में अर्थ और काम की प्राप्ति करता था तो वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम में मोक्ष की साधना । प्रथम तीन का समन्वय कर अर्थ और काम को धर्म का अनुवर्ती बनाया गया। मोक्ष परमपुरूषार्थ बन गया।पुरूषार्थ ही मनुष्यता का उन्नायक तत्व है।पुरूषार्थ से मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है। इसी के माध्यम से मनुष्य अपने विभिन्न कर्तव्यों का पालन करता रहा है। पुरूषार्थ से मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के साथ–साथ समाज का भी उत्कर्ष होता है।व्यास ने इसे पाणिवाद के द्वारा अभिव्यक्त किया है। जगत् में जिन लोगों के पास हाथ हैं, जो कर्म में दक्ष है तथा उत्साह सम्पन्न हैं, उनके सब अर्थ सिद्ध होते हैं।

सत्य, श्रम, सत्कर्म की हमेशा ही प्रतिष्ठा रही है। जो श्रम करता है, आज का कार्य कल पर नहीं छोड़ता है, उसे ही सफलता प्राप्त होती है

न श्वः श्वमुपासीत को हि मनुस्यस्य श्वो वेद।[2]

पुरूषार्थी को ही लक्ष्मी प्राप्त होती है। जो श्रम नहीं करता उसे लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती–नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति[3] और जो पुरूषार्थी होते हैं वे मार्ग में आने वाली बाधाओं की परवाह नहीं करते बल्कि अपने कार्य की सिद्धि के बिना उससे विमुख नहीं होते हैं। भर्तृहरि ने भी कहा है–

न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीरा।[4]

बैठे हुए का ऐश्वर्य बैठ जाता है और चलने वाले पुरूषार्थी का ऐश्वर्य अनुगामी बना रहता है–

आस्ते भगः आसीनस्य, ऊर्ध्वं तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चरति चरतो भगः।[5]

पुरूषार्थ चतुष्टय का आधार भी धर्म को ही माना गया है। सद्गुणों की पूर्णता और लोकहित साधकता को दृष्टि में रखकर ही ऋषि ने कहा है कि धर्म समस्त जगत की प्रतिष्ठा है, धर्मात्मा प्राणी धर्म से पाप को दूर करते हैं। धर्म में सब कुछ प्रतिष्ठित है।इसलिए मनीषी धर्म को सर्वश्रेष्ठ कहते हैं–

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा।
धर्मेण पापम् अपनुदति, धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
तस्माद् धर्मम् परमम् वदन्ति।[6]

धर्मभावना को वैदिक ऋषियों ने सत्य के प्रतीक के रूप में मान्यता दी और कहा जो निश्चय रूप से धर्म है, वही सत्य है, इसलिए सत्य बोलते हुए व्यक्ति के प्रति कहते हैं कि वह धर्मानुकूल बोल रहा है, और धर्म के अनुकूल बोलते हुए व्यक्ति के प्रति कहते हैं कि वह सत्य बोल रहा है–

यो वैस धर्मः सत्यं वैतत्।तस्मात् सत्यं वदन्तं।
आहुः धर्मं वदति इति, धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदति इति।
तद ह एव एतत् उभयं भवति।[7]

सत्य की ईश्वर रक्षा करता है और जो झूठ है उसका सर्वनाश करता है–

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय, सत चासत च वचसी।
तयोःयत् सत्यं यतरद् ऋजीयः, तद् इत् सोमो अवति हन्ति आसत्।।[8]

महाभारत में व्यास ने कहा है कि धर्म का परित्याग किसी भी दशा में भय से या लोभ से कभी नहीं करना चाहिए। धर्म शाश्वत् है, चिरस्थायी है–

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्, धर्मं त्येजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यं सुखःदुःखे त्वनित्ये–, जीवो नित्यः हेतुरस्य त्वनित्यः।।

वैदिक वाङ्मय में नैतिक जीवन के आधार स्तम्भ ऋत्, सत्य, व्रत, आदि सिद्धान्तों का विशद उल्लेख मिलता है।

वस्तुतः संस्कृत में साहित्य और कला का विकास ही धर्म के साथ हुआ और इस प्रकार सत्य, शिव और सौन्दर्य के समुचित समन्वय की प्रारंभ से ही प्रतिष्ठा रही है।

प्रजापति ने अपने पुत्रों को द्द्द् के माध्यम से शिक्षा देते हुए कहा है कि इन्द्रियों का दमन करो (संयम करो), धर्म और देश के लिए धन का दान दो, और प्राणियों पर दया करो–

तद् एतद् एव एषा दैवी वाग् अनुवदति, स्तनयित्नु द द द इति।
तद एतत् त्रयं शिक्षेद् दमं दानं दयाम् इति।[9]

भारतीय संस्कृति त्यागपूर्वक उपभोग की भावना की पोषक रही है। वह सभी को साथ लेकर चलती है, इसलिए कहा भी है– ''तेनत्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[10]

अन्य प्राणी चाहे वेदेवता हो या पशु, सृष्टा के नियम का उल्लंघन नहीं करते। केवल मनुष्य ही सृष्टा के अनुशासन को भंगकर भोगोन्माद की आसुरी प्रवृत्ति में तत्पर रहते हैं।

कठोपनिषद् में यमराज ने अर्थाधिकार के अभिमान से पागल तथा आलसी पूंजीपतियों को चेतावनी देते हुए कहा है कि भोग का यही लोक है, दूसरा नहीं। ऐसा समझने वाले ये अल्पज्ञजन बार–बार मेरे कठोर नियन्त्रण की यातना सहते हैं।

न साम्परायः प्रतिभाति बालं, प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी, पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।।[11]

काम के संबन्ध में भी वैदिक ऋषियों ने गंभीरता से विचार किया है क्योंकि जिस प्रकार स्थूल जगत् की व्यावहारिक विषमता का मूल कारण अर्थ है उसी प्रकार सांस्कृतिकविश्वास हीनता का मूल कारण कामजनित उपभोग एवं उच्छृंखलता भी है। यम–यमी संवाद में यम ने अपने उत्तर से जीवनोत्कर्ष के गौरव भाव को विस्तार दिया है।अर्थ और काम का नियमन, संयम ही व्यक्ति को उच्च विचारों, महद् आदर्शों की ओर प्रेरित करता है।

वैदिक संहिताओं में समाज के सर्वविध कल्याण की कामना प्रकट की गई है जो जीवन मूल्यों की प्राचीनता, सर्वग्राह्यता, एवं निरन्तरता की द्योतक है। सारी सृष्टि में समरसता का दर्शन करते हुए ऋषियों ने मनुष्य में भेद बुद्धि को निरस्त करने का संदेश दिया है–

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम।[12]

मनुष्य और मनुष्य की समानता के विचार को हृदयग्राही रूप में प्रकट किया गया है–

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।[13]

राष्ट्राभिवर्धन सूक्त में ऋषि की इच्छा है कि वह शत्रुहन्ता, शत्रुरहित, तथा शत्रुनाशक बन कर राष्ट्र का पोषण करे।अभयसूक्त में निर्भय होकर कर्तव्यपालन करने की कामना के साथ, मनस्विता, शक्ति और संकल्प तथा मंगलभाव का समन्वय है–

अभयं पश्चाद् अभयं पुरस्तात्, उत्तराद् अधराद अभयं नो अस्तु
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।[14]

मातृभूमि के प्रति आकण्ठ भक्ति, कल्याण कामना, जैसे अनेक जीवनमूल्यों की मार्मिक अभिव्यक्ति पृथिवी सूक्त में की गई है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श को ऋषियों की समर्थ वाणी प्रकट करते हुए कहती है कि यहाँ निवास करने वाले मानव जो तरह–तरह की भाषाएं बोलते हैं, विभिन्न धर्मों का पालन करते हैं, सब कवि की दृष्टि में एक ही माँ के बेटे हैं। '' माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः– धरती मेरी माँ है और मैं इसका बेटा हूँ। यह इस सूक्त का केन्द्रीय भाव है। धरती के प्रति अनुराग तथा समाज के लिए कल्याणभाव प्रकट करता हुआ कवि कहता हैः–

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु।
बभ्रु कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्दगुप्ताम्।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्।।[15]

(हे पृथिवी! तुम्हारे पहाड़, हिमाच्छादित पर्वत और तुम्हारे जंगल हम मानवों के लिए सुखकर हों। मैं भूरी, काली, लाल, अनेक रूपों वाली विस्तीर्ण इस धरती पर अविजित और अक्षत रह कर प्रतिष्ठित रहूँ।)जहाँ

मानव सभी के सुख एवं कल्याण की कामना कर रहा है तो वहाँ जीवन–मूल्य निश्चित ही उदात्त कोटि के होंगे। लौकिक संस्कृत साहित्य में महाकवियों ने जीवन–मूल्यों का सशक्त चित्रण किया है जो भारतीय जीवनदृष्टि को स्पष्ट करने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। वाल्मीकि ने सर्वत्र व्यक्ति की अपेक्षा समाज को महत्व दिया है। राम का समग्र जीवन इस सिद्धान्त से अनुप्राणित था कि जहाँ व्यापक या सामूहिक हितों की रक्षा का प्रश्न खडा हो, वहाँ संकुचित या व्यक्ति के हितों की बलि देदेना श्रेयस्कर है। वाल्मीकि का पुरूषार्थ में अटूट विश्वास था। उन्होंने समाज को उत्साह सम्पन्न और कर्मठ बनाने के लिए कहा है–

उत्साहो बलवानार्थं नास्त्युसाहसमं बलम्।
सोत्हासस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम्।।[16]

जीवन के उच्चतर मूल्यों में उनकी आस्था थी। सुन्दरकाण्ड में रावण के अन्तःपुर में आधी रात के समय बेसुध सोयी हुई अंगनाओं के एक के बाद एक कितने आकर्षक चित्र कवि खींचता चला जाता है, पर इस सबसे पृथक् एक व्यक्ति एकदम निर्लेप भाव से उन सोई हुई प्रमदाओं को देख रहा है। उसके मन में विचार उठ रहा है– 'न हि मे परदाराणां दृष्टि विषयवर्तिनी।' यह व्यक्ति है हनुमान, यही वाल्मीकि का एक आदर्श है जो जीवन मूल्यों का निरन्तर पोषण कर रहा है। वाल्मीकि की नारी का सम्पूर्ण जीवन ही जीवन मूल्यों के संवर्धन में व्यतीत होता है–

अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान्।[17]

महाकवि भास जीवन में उत्साह, साहस, कर्मठता को वरेण्य मानते हैं।[18]भास दानशीलता, उदारता, माता–पिता की आज्ञापालन।[19] मधुरवाणी तथा विनय के प्रशंसक थे–

वाचानुवृत्ति खलु अतिथिसत्कारः।[20]

माता तो देवताओं से भी बढ़कर है–

'माता किल मनुष्याणां देवतानां च दैवतम्।'[21]

महाकवि अश्वघोष ने जीवन में तप, दम, शम को उत्कृष्ट जीवन मूल्य के रूप में मान्यता दी है।[22]उनके अनुसार कामनाएं उपभोग से कभी तृप्त नहीं होती इसलिए अपरिग्रह का मार्ग वरेण्य है।[23] अश्वघोष की मान्यता है कि हमें रति के लिए काम का सेवन न करना चाहिए, काम सेवन के लिए धन की रक्षा न करनी चाहिए, धन के लिए धर्माचरण न करना चाहिए तथा धर्म के लिए हिंसा नहीं करनी चाहिए।[24]अश्वघोष सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, निष्कपटता, दया, तथा दृढ निश्चय को जीवन के उच्चतम मूल्य के रूप में स्थापित करते हैं।

महाकवि कालिदास ने रघुवंशम् में कहा है कि–

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम्।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम्।।
यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम्।
यथापराधदण्डानां यथाकाल प्रवोधिनाम्।।
त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषुणां प्रजायै गृहमेधिनाम्।।
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।

''(" मैं जीवनभर शुद्ध आचरण करने वाले, फल–प्राप्ति पर्यन्त कर्म करने वाले, समुद्रपर्यन्त चक्रवर्तीशासक, स्वर्ग पर्यन्त रथ की अबाधित गतिवाले, विधिपूर्वक हवन करने वाले, इच्छा पूर्ति तक याचकों को दान देने वाले, अपराध के अनुसार दण्ड देने वाले, यथा समय जागने वाले, त्याग के लिए धन एकत्र करने वाले, सत्य की रक्षा के लिए कम बोलने वाले यश प्राप्ति के लिए विजय की कामना वाले, सन्तानोत्पत्ति के लिए ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले, शैशव में विद्या का अभ्यास, यौवन में विषयों के उपयोग की आकांक्षा, वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति का आश्रय लेने वाले और अन्त में योग से शरीर का त्याग करने वाले रघुवंशियों का वर्णन करता हूँ।)''[25]ये जीवन मूल्य रघुवंशियों के चरित्र में ही नहीं अपितु भारतीय संस्कृति में अनुस्युत है। ऐसा है यहाँ का शासक वर्ग और प्रजा जो जीवन मूल्यों का निरन्तर रक्षण संर्वधन करती रही है।

इसी प्रकार गृहस्थ जीवन की सफलता का सार बताते हुए महर्षिकण्व द्वारा दिया गया शकुन्तला के लिए उपदेश है–

शुश्रुषस्व गुरून् कुरू प्रियसखीवृतिं सपत्नीजने,
भर्तुविप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भवदक्षिणा परिजने भागयेष्वनुत्सेकिनी,
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।[26]

कालिदास ने राग और विराग, भोग और मोक्ष में समन्वय को जीवनमूल्य के रूप में अपने साहित्य में प्रतिष्ठित किया है–

प्राणानामनिलेन वुत्तिरूचिता सत्कल्पवृक्षेवने,
तोये काञ्चनपद्मरेणु कपिशे धर्माभिषेक्रिया।
ध्यानं रत्नशिलातलेषु विबुधस्त्रीसन्निधौ संयमो
यत् कांक्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी।।[27]

अर्थात् प्राणायाम्, अभिषेक, ध्यान और संयम के लिए संसार के सुख और वैभव से भागना श्रेयस्कर नहीं है। कालिदास ने त्याग और तप इन दोनों ही जीवन मूल्यों में बार–बार अपनी आस्था व्यक्त की है।[28]

शारीरिक बलिष्ठता की अपेक्षा बाणभट्ट इन्द्रियजय और तपःपूत तेजस्विता को उच्चतर मानते हैं।[29] बाण जीवन में उत्साह, उद्योग, के साथ संयम और धैर्य का समन्वय चाहते हैं। महाश्वेता को कवि आत्मघात करने से इसलिए रोकता है क्योंकि उसे विश्वास है कि धैर्यपूर्वक आस्था और विश्वास के साथ जीते रहने वाला व्यक्ति एक ना एक दिन अपने इष्ट को पायेगा ही। बाण का आज के संतप्त मानव के लिए भी यही सन्देश है।

महाकवि हर्ष के जीवन मूल्यों का मूर्तिमानरूप जीमूतवाहन है। उसके चरित्र द्वारा हर्ष ने पितृ भक्ति, अपरिग्रह, अहिंसा, प्राणिदया, महासत्वता और त्याग को जीवन मूल्य के रूप में उपस्थित किया है। हर्ष का मानना है कि परोपकार के लिए अपने आपको बलिदान कर देने में ही जीवन की सार्थकता है।[30]

शिवजिनका आधा शरीर उमा का है और जो काम को भस्म कर के भी रति को उसके अनंग रूप में जीवित रहने का वरदान दे चुका है और कृष्ण जो काम से युद्ध के लिए रासोत्सव रचकर भी अच्युत बना रहता है। योगीश्वर शिव और गोपीश्वर कृष्ण के जीवन का मूलस्थापन संस्कृत साहित्य में सर्वत्र उपलब्ध होता है।

महर्षि वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जिन जीवनमूल्यों को वाणी दी थी वे ही परवर्ती साहित्य में न्यूनाधिक रूप में परिलक्षित होते हैं। संस्कृत साहित्य आख्यान एवं सुभाषित के माध्यम से जीवन को निरन्तर मूल्य के प्रति सचेष्ट और तत्पर रखता है।

भवभूति ने दाम्पत्य– संबन्ध की अपूर्वता का बहुत सुन्दर वर्णन करते हुए कहा कि यह सुख और दुःख में समान रहता है, जीवन की सभी परिस्थितियों में एक सा रहता है, यह हृदय को शांति देता है, वृद्धावस्था में भी इसका रस न्यून नहीं होता, विवाह से मृत्यु तक प्रेमरूप में ही बना रहता है–

अद्धैतं सुख–दुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु य–,
द्विश्रामो हृदस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं,
भद्र तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्रार्थ्यते।।[31]

नीलकण्ठ दीक्षित ने सुखी जीवन के लिए सफल दाम्पत्य को आवश्यक बताया है। गृहस्थ को यदि मनपसन्द गृहिणी मिल जाये, तो संसार उसके लिए भार नहीं, सार ही सार बन जाता है। मनुष्य स्वर्ग तथा अपवर्ग (मुक्ति) दोनों इसी संसार में पा सकता है। यदि दाम्पत्य जीवन अनुकूल है, तो सब है, यदि दाम्पत्य प्रतिकूल है तो कुछ नहीं–

गृहिणी यदि लभ्येत गृहिणी हृदयङ्गमा।
संसार इति को भारस्तं सारमनुपश्यतः।।
आहत्य चिनुमः स्वर्गपगवर्गमपि क्रमात्।
अनुकूले हि दाम्पत्ये प्रतिकूले न किंचन।।[32]

दाम्पत्य जीवन की पारिवारिक–सुखाशयता का वैदिक ऋषि ने हृदय से अभिनन्दन किया है। दम्पत्ति आप दोनों यहाँ एकत्र ही रहें, पृथक न हो। अपने घर में पुत्र–पौत्रों के साथ खेलते हुए, आनन्द का अनुभव करते हुए पूरी आयु को भोगें–इह एव स्तं मा वियौष्टं आयुः वि+अश्नुतम्।

क्रीडन्तौ पुत्रैः नप्तृभिः मोदमानौ स्वे गृहे।।[33]

कठोपनिषद में अतिथि सेवा का महत्व बताते हुए कहा है कि अतिथि की सदा पूजा करनी चाहिए। जिस मनुष्य के घर में अतिथि बिन भोजन किये निवास करता है तो उसकी सारी आशाएं, पुत्र, पशु, धन आदि नष्ट हो जाते हैं।[34]

अभ्यागत के सत्कार की भारत में प्राचीन समय से ही परम्परा रही है। 'अतिथि देवो भव' की भावना साहित्य में निरन्तर पल्लवित होती रही है।अतिथि सत्कार गृहस्थ का परम धर्म है । वह फल–फूल अर्ध्य से अतिथि सत्कार करता था–

फलकुसुमगर्भैणपल्लवार्ध्येण दूरान्मामुपतिष्ठते।[35]

संस्कृत साहित्यकारों ने नये चरित्र, नये बोध और नई दृष्टि लेकर काव्य रचना की। मध्यकाल में जहाँ वैष्णव भक्ति परक विशाल साहित्य का सृजन हुआ तो आधुनिक काल में शिवराजविजय, प्रतापविजय, जवाहरचरित, गणपति संभव आदि अगणित ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। संस्कृत साहित्यकार समय के साथ सावधान तो रहे ही हैं साथ ही पुराने चरित्रों को युगीन संदर्भ में चित्रित करने में भी अग्रणी रहे हैं। डॉ. सत्यव्रत का गुरूगोविन्दचरित, रेवाप्रसाद द्विवेदी का सीता चरित प्रभुदत्तशास्त्री का गणपतिसंभवम्, राजेन्द्र मिश्रका जानकी जीवनम्, सत्यव्रत शास्त्री का रामकीर्तिकौमुदी तथा बोधिसत्वचरितम् इसी प्रकार के उदाहरण हैं।

कोई भी साहित्यकार जीवनमूल्य को अभिव्यक्ति दिये बिना सफल नहीं हो सकता। संस्कृत साहित्य की श्रेष्ठता की कसौटी यह भी है कि उसने शाश्वत और युगीन, सामाजिक और वैयक्तिक, समष्टि और व्यष्टि के मूल्यों को समन्वित दृष्टि देकर अभिव्यक्त किया है। जहाँ इस साहित्य में अध्यात्मवाद की गूँज है, वहाँ भौतिकवाद की स्वीकृति भी है। ये जीवन मूल्य व्यक्ति के आत्मिक विकास में सहायक हैं तथा इनसे समाज का नैतिक आधार दृढ होता है।

निष्कर्ष

संस्कृत साहित्य ने प्रवृत्ति और निवृत्ति के समन्वय को जीवन मूल्य के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। अतः स्पष्ट है कि मानवीय जीवन का मूल्य सत्यं शिवं सुन्दरम, इन तीनों तत्त्वों पर निर्भर है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *साहित्य समीक्षा– बाबू गुलाबराय, पृष्ठ 18*
2. *शतपथ ब्राह्मण 2/1/3/9*
3. *ऐ.ब्रा. 6/2/1*
4. *नीतिशतकम्। 81*
5. *ऐ. ब्रा. 33.3*
6. *तै.आ.10.6.3*
7. *शत. 14.4.2.36*
8. *ऋग्वेद 7.104.12*
9. *शतपथ 14.8.2.4*
10. *ईशावास्योषनिद/1*
11. *कठोपनिष्द् 1/2/6*
12. *ऋग्वेद– संज्ञानसूक्त 10/191/2*
13. *वही 10/191/ 3*
14. *अथर्ववेद 19./5.6*
15. *पृथ्वी सूक्त 12/1/11*
16. *रामायण 4।1।122*
17. *वही2/27/7*
18. *प्रतिज्ञा यौगन्धरायण /1/18 एवं स्वप्नवासवदत्ता 6/7*
19. *प्रतिमा 1/5*
20. *वही पंचम अंक*
21. *मध्यमव्यायोग/37*
22. *बुद्धचरितम् 2/52*
23. *सौन्दरनन्द 5/23*
24. *बुद्ध चरितम् 2/14*
25. *रघुवंशम् 1/5–8*
26. *अभिज्ञानशाकुन्तम् 4/18*
27. *वही (7/12*
28. *कुमारसंभवम् 5/8–29 रघुवंशम् 8/31*
29. *कादम्बरी पृ.–40–43*
30. *नागानन्द पृ./4/5*
31. *उत्तररामचरितम् 1/ 39*
32. *सभारंजनशतक/ 92,93*
33. *ऋग्वेद 10/85/42*
34. *कठोपनिषद्/1/1/8*
35. *उत्तररामचरित अंक–2*